22 अगणितीय आत्मा के लिए गणित

देविका नारायण

मेरे और गणित के बीच हमारे सर्वश्रेष्ठ वर्षों के दौरान भी तनावपूर्ण सम्बन्ध रहे। आज तो यह नाता इतना परेशान करनेवाला बन चुका है कि कई मर्तबा मुझ पर यह आरोप लगा है कि यदि कोई बात गणित से जरा भी ताल्लुक रखती है तो उसके प्रति मेरे भीतर कोई 'अन्धा अवरोध', लगभग फोबिया जैसा बेबुनियाद भय, दीवाल खड़ी कर देता है। मैं इस बात को स्वीकार करती हूँ। लेकिन मैं इसे आधारहीन मानसिक आतंक के रूप में नहीं देखती, बल्कि इस क्षेत्र में अपनी सीमाओं के पीड़ादायी अहसास से उठता हुआ देखती हूँ। यह अहसास एक बोझ की तरह है जो गणित के साथ किसी भी अगले 'मुकाबले' की सम्भावना को निरस्त कर देता है, और फलस्वरूप यह सीमा और भी मजबूत हो जाती है। अतः मेरी वास्तविक समस्या अपने आप में यह सीमा नहीं है बल्कि वह तीव्र बेचैनी या भय है जो इससे पैदा होते हैं और जिनकी वजह से गणित में कोई लाभकारी प्रयास करने की गुंजाइश भी नहीं बचती। दरअसल बात यह है कि हर बार अपने भीतर के व्यक्ति को किसी गणितीय समस्या से घिरा हुआ पाकर मैं 'लड़ने' के बजाय वहाँ से 'भाग निकलने' का रास्ता चुनती हूँ ।

हमेशा से ऐसा नहीं था। मैं उन सुनहरे वर्षों को बयान करना चाहूँगी जब एक अद्‌भुत शिक्षक ने मुझे गणित के साथ एक नाजुक–सी दोस्ती बनाने में मदद की। मैं सेन्टर फॉर लर्निंग में बड़ी हुई जो विद्यार्थियों और शिक्षकों की एक ऐसी छोटी–सी बिरादरी है जहाँ ये लोग मिलकर पढ़ने की अवधारणा को मौलिक रूप से पुनर्परिभाषित करते हैं। गणित की कक्षा में, जब हम प्रश्नों को मिलकर हल करते थे, गलतियाँ करते थे, प्रश्न पूछते थे तो मेरा आत्मविश्वास बढ़ गया था। धीरे–धीरे, झिझक, घबराहट और भय के स्थान पर गणित की भाषा के प्रति विस्मय का भाव विकसित हो गया। पीछे देखने पर मुझे लगता है कि यह बहुत अनूठी बात थी कि कैसे अपने तमाम आत्मसंशयों व घबराहट के बावजूद कक्षा कतई डरावनी जगह नहीं लगती थी। मैं सुरक्षित महसूस करती थी क्योंकि मुझे पता था कि मुझे आँका नहीं जा रहा है या लगातार मेरा मूल्यांकन नहीं हो रहा है। ऐसा इसलिए था क्योंकि मेरी कक्षा में हमेशा ही संवाद के लिए सकारात्मक और दोस्ताना वातावरण होता था जिसमें मैं अपने डरों का मुकाबला कर सकती थी। एक ऐसी चीज, जिसके लिए मेरे पास कोई कौशल नहीं था, के साथ कुश्ती लड़ने की प्रक्रिया ऐसी बन गई जिसका पुरूस्कार (यानी कि सही उत्तर) बहुत संतोष देने वाला होता था, और सबसे बड़ी बात कि इसमें बहुत मजा आता था। कैसे मेरे शिक्षक ने यह जबरदस्त कमाल किया, यह वाकई में एक रहस्य है। मैं आपको बता दूँ कि मुझे गणितीय संघर्ष में मजा लेना सिखा पाना उनकी असाधारण उपलब्धि है। बल्कि, मुझे लगता है कि किसी शिक्षक की निपुणता परखने का मानदण्ड यही होना चाहिए। क्या आप अपने विषय के प्रति सबसे ज्यादा प्रतिरोधी रुख रखने वाले और मुश्किल प्रति वाले विद्यार्थियों को मजा लेने की राह दिखा सकते हैं? शिक्षा मंत्रालय को इसे शिक्षक की बुनियादी योग्यता बना देना चाहिए। मुझे अपनी कक्षाओं की जो सबसे जीवन्त स्मृति है, वह यह है कि मैं कक्षाओं में कितना बोलती थी – और मेरा सबसे ज्यादा दोहराया जाने वाला वाक्य होता था, 'पर मुझे समझ नहीं आया'।

मैं गणित में बताए जाने वाले हर कदम का बहुत होशियारी से और सावधानीपूर्वक अनुसरण करती थी, मेरे दिमाग के चक्के घूमते थे, और जब भी मेरे सामने कोई तात्कालिक अवरोध आ जाता तो मैं बीच में सवाल उठाती थी। मैं पूछती थी क्योंकि मैं समझना चाहती थी। मैं पूछती थी क्योंकि मुझे ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। गणित हमेशा से ही मेरे लिए एक संघर्ष था। पर तब यह ऐसा संघर्ष बन गया था जिसमें मैं भाग लेना चाहती थी। हालाँकि मेरे लिए गणित कभी भी आसान नहीं था और मुझे उसमें हमेशा बहुत प्रयास करना पड़ता था, लेकिन फिर भी मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि उस दौरान मेरे मन में कक्षा के प्रति कोई भय या घृणा का भाव नहीं होता था। वह यात्रा किसी खड़ी ढलान वाली पहाड़ी पर लम्बी चढ़ाई करने के सदृश थी –

> *"पीछे देखने पर मुझे लगता है कि यह बहुत अनूठी बात थी कि कैसे अपने तमाम आत्मसंशयों व घबराहट के बावजूद मुझे कक्षा कतई डरावनी जगह नहीं लगती थी। मैं सुरक्षित महसूस करती थी क्योंकि मुझे पता था कि मुझे आँका नहीं जा रहा है या लगातार मेरा मूल्यांकन नहीं हो रहा है। ऐसा इसलिए था क्योंकि मेरी कक्षा में हमेशा ही संवाद के लिए सकारात्मक और दोस्ताना वातावरण होता था जिसमें मैं अपने डरों का मुकाबला कर सकती थी।"*

जो कठिन और बहुत ऊर्जा निचोड़ने वाली, पर अन्त में फलदायी होती है जब आप अपनी मंजिल पर पहुँच जाते हैं। ''ओह, ठीक है, अब मैं समझी'', अपनी छोटी–सी पहाड़ी की चोटी पर पहुँचकर मैं कहती थी।

मुझे उस कक्षा से निकले सात साल हो चुके हैं। जहाँ तक मेरे गणित का सवाल है, अब उसमें जंग लग चुकी है और मैं बिलकुल ही 'फॉर्म' में नहीं हूँ । मेरे कौशल जो एक समय लगातार अभ्यास के कारण सक्रिय थे, अब किसी इस्तेमाल न की गई माँसपेशी की भाँति शिथिल पड़ गए हैं, और आत्मविश्वास पूरी तरह खो जाने से मेरा गणित के प्रति भय और दहशत का पुराना रवैया वापस लौट आया है।

तो गणित के साथ मेरा यह निजी अनुभव शिक्षकों के लिए प्रासंगिक और महत्वपूर्ण क्यों है? क्या यह हमें सीखने की प्रक्रिया के बारे में कुछ उपयोगी बात बताता है? मैं यह इसलिए पूछ रही हूँ क्योंकि हम यह आराम से मान सकते हैं कि यह कोई अनूठा अनुभव नहीं है जो पूर्णतः अकेला मेरा हो। ऐसे विद्यार्थियों की बड़ी संख्या है जिनमें गणित के प्रति अरुचि का भाव होता है और जिन्हें गणित बेहद कठिन, हताश करने वाला, और बिलकुल भयावह लगता है। ये बातें परीक्षाओं में बदतर प्रदर्शनों, शिक्षकों द्वारा की जाने वाली तुलनाओं और खुद को अपने दोस्तों की तुलना में 'मूर्ख' मानने की भावना से और बलवती होती जाती हैं। शिक्षकों को ऐसे विद्यार्थियों की मदद करने के लिए लगातार ऐसे मौलिक व सृजनात्मक तरीके खोजते रहना चाहिए जिनसे खलबली और घबराहट के रूप में बाहर आने वाली उनकी भावनात्मक प्रतिक्रिया की तीव्रता को कम किया जा सके। गणित को खेलने की वस्तु के रूप में परिवर्तित करना होगा। जैसे कि कोई विशाल जिगसॉ पहेली को हल करना या फिर गुँथे हुए ऊन के किसी बड़े गोले को सुलझाना। उसके साथ खेलें। उस पर काम करें। उसकी बारीक सटीकता को सराहें।

यदि शिक्षक ऐसा कौशल हासिल कर पाता है तो ही गणित एक परभक्षी दैत्य से रूपान्तरित होकर एक मजेदार व चुनौतीपूर्ण खेल बन सकेगा।

मुझे पता है कि जब मैं फिर से गणित की चुनौती का सामना करने की ठानूँगी तो वह कतई आसान नहीं होगा और उसमें अथक प्रयास तथा कड़ी मेहनत लगेगी। लेकिन अपनी कक्षा के दौर से मैं एक चीज तो याद रखूँगी कि इस चुनौती से भरी प्रक्रिया का मजा कैसे लेना है।

देविका नारायण *ने 2006 में सेन्टर फॉर लर्निंग से स्नातक की पढ़ाई पूरी की। उन्हें सामाजिक विज्ञान पढ़ने में, लेखन में, पत्रकारिता में, विरोध करने में, दिल्ली घूमने में, पैदल चलने में, धूप में बैठकर किताबें पढ़ने और जलेबियाँ खाने में मजा आता है। फिलहाल देविका दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स से समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर रही हैं। उनसे* narayan.devika@gmail.com *पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*